दर्दनिवारक दवा परीक्षण के विचित्र परिणाम

दर्दनिवारक दवाइयों के परीक्षण में एक विचित्र बात सामने आई है जिसने दवा कंपनियों के अलावा दर्द सम्बंधी शोधकर्ताओं को भी चक्कर में डाल दिया है। आम तौर पर जब कोई नई दवा खोजी जाती है तो उसका परीक्षण करने के कुछ मानक तरीके हैं। एक तरीका है कि मरीज़ों के दो समूह लिए जाएं। इनमें से एक समूह के मरीज़ों को वह दवा दी जाए, जिसका परीक्षण किया जाना है। दूसरे समूह को दवा के नाम पर कोई ऐसी चीज़ दी जाए जिसका कोई असर नहीं होता। सारा दारोमदार इस बात पर होता है कि मरीज़ को पता नहीं चलना चाहिए कि वह कौन-से समूह में है।

दवा के नाम पर जो चीज़ दी जाती है, उसे चिकित्सा विज्ञान की भाषा में प्लेसिबो कहते हैं। इतना घुमा-फिराकर परीक्षण इसलिए किया जाता है ताकि यह पता चल सके कि क्या नई दवा वास्तव में प्रभावकारी है या मरीज़ को सिर्फ इस एहसास से राहत मिल रही है कि उसे देखरेख मिल रही है।

कोई भी दवा प्लेसिबो के मुकाबले उल्लेखनीय रूप से बेहतर असर दिखाए, तभी माना जाता है कि जो असर है वह दवा की जैव-रासायनिक क्रिया के कारण हो रहा है न कि सिर्फ देखरेख मिलने के एहसास की वजह से। हाल ही में कनाडा के मैकगिल विश्वविद्यालय के शोधकर्ता जेफ्री मोगिल ने रिपोर्ट किया है कि अमरीका में हुई दर्द निवारक दवाइयों के परीक्षण में प्लेसिबो अधिक से अधिक असरदार साबित हो रहे हैं। यानी परीक्षणों में वास्तविक दवा और प्लेसिबो के बीच असर का अंतर कम होता जा रहा है - और सबसे विचित्र बात है कि ऐसा सिर्फ अमरीका में होने वाले परीक्षणों में हो रहा है।

यह पहले भी देखा जा चुका है कि अवसाद-रोधी और एंटी-सायकोटिक दवाइयों के परीक्षणों में भी वास्तविक दवा के मुकाबले प्लेसिबो का असर अधिक से अधिक सशक्त दिख रहा है। इसी सिलसिले में मोगिल ने सोचा कि क्या दर्द निवारकों की भी यही स्थिति है। इसे समझने के लिए उन्होंने 1990 से 2013 के बीच तंत्रिका सम्बंधी दर्द की दवाइयों के 84 क्लीनिकल परीक्षणों के आंकड़ों को देखा।

उन्होंने पाया कि मरीज़ों द्वारा बताए गए एहसासों के आधार पर इन 23 सालों में वास्तविक दवा का दर्द निवारक असर तो एक ही स्तर पर थमा रहा है मगर प्लेसिबो द्वारा दर्द निवारण का स्तर बढ़ता गया है। जैसे, 1996 में एक क्लीनिकल परीक्षण में शामिल मरीज़ों का कहना था कि प्लेसिबो की तुलना में वास्तविक दवा ने 27 प्रतिशत अधिक असर दिखाया। इसके बाद 2013 के एक क्लीनिकल परीक्षण में मरीज़ों ने बताया था कि दवा का असर प्लेसिबो से मात्र 9 प्रतिशत अधिक रहा। प्लेसिबो असर में यह वृद्धि सिर्फ अमरीका में देखी गई है। इसी दौरान युरोप, एशिया व अन्यत्र ऐसा कोई असर नहीं देखा गया। मोगिल का यह अध्ययन *पेन* नामक शोध पत्रिका में प्रकाशित हुआ है।

अब वैज्ञानिक इस विचित्र प्रभाव की व्याख्या करने के प्रयास कर रहे हैं। एक व्याख्या तो यह है कि अमरीका में दर्दनिवारक दवाइयां विज्ञापनों के ज़रिए सीधे उपभोक्ताओं को बेची जाती हैं और इस वजह से दवाइयों से उनकी अपेक्षाएं कुछ ज़्यादा ही होती हैं और यह प्लेसिबो में झलकती है। एक व्याख्या यह है कि शायद अब जो दर्दनिवारक आ रहे हैं, वे सचमुच उतने कारगर नहीं हैं। अलबत्ता, इस खोज ने चिकित्सा वैज्ञानिकों के कान खड़े कर दिए हैं और जल्दी ही इस संदर्भ में कुछ नई सूझबूझ मिलने की उम्मीद है। ***(स्रोत फीचर्स)***